ISSN : 3048-6203 Volume -2| Issue -2| July - Dec 2025

शोध भूमि
शिक्षा एवं शिक्षण शास्त्र विषय की पूर्व समीक्षित शोध पत्रिका
Page No. : 515-522

# कन्हैयालाल सेठिया और मणि मधुकर के साहित्य में पर्यावरणीय और सांस्कृतिक संवेदना

**बलराम**
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर (राजस्थान)
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)
ईमेल–brmatwa@gmail.com

## सारांश

भारत की विविध भौगोलिक इकाइयों में राजस्थान का मरुस्थलीय क्षेत्र अपने कठोर भू–परिदृश्य, रेत के विस्तीर्ण धोरों, जलाभाव, सूखे और जीवन के संघर्षमय परिवेश के कारण विशिष्ट पहचान रखता है। मरुस्थल की भौगोलिक परिस्थितियाँ केवल प्राकृतिक पर्यावरण तक ही सीमित नहीं रहतीं, बल्कि वे वहाँ के जन–जीवन, संस्कृति, भाषा, लोककला, संगीत और साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डालती हैं। रेगिस्तान की यह भूमि एक ओर तो अभाव और विषमता की पीड़ा का प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर लोकजीवन की जिजीविषा, आशा और संघर्ष की अमिट गाथा भी कहती है। यही कारण है कि मरु प्रदेश केवल भौगोलिक सत्ता नहीं है, बल्कि यह एक सजीव सांस्कृतिक इकाई और जीवन की अनवरत चेतना का परिचायक है।

हिंदी साहित्य में अनेक रचनाकारों ने मरुभूमि के यथार्थ को स्वर दिया है, किंतु कन्हैयालाल सेठिया और मणि मधुकर का योगदान इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन दोनों ने मरु प्रदेश के जीवन और संस्कृति को साहित्य के केंद्र में रखकर उसे व्यापक राष्ट्रीय और वैश्विक विमर्श से जोड़ा।

कन्हैयालाल सेठिया का काव्य मरुभूमि की पीड़ा का प्रामाणिक दस्तावेज है। उनकी प्रसिद्ध कविता "धरती धोरां री" में मरुस्थल के रेतीले विस्तार, वहाँ की सांस्कृतिक जीवटता और जीवन की संघर्षमय धारा का सजीव चित्रण मिलता है। सेठिया केवल पर्यावरणीय विषमताओं का ही उल्लेख नहीं करते, बल्कि वे मरु प्रदेश की सांस्कृतिक अस्मिता, लोकगीतों, लोककथाओं और संघर्षशील जन–जीवन को भी अपने काव्य में उतारते हैं। उनका साहित्य इस तथ्य को उजागर करता है कि मरुस्थल केवल अभाव

का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह जीवन के विविध आयामों को समझने और गढ़ने वाली एक समृद्ध भूमि भी है।

मणि मधुकर ने कथा–साहित्य के माध्यम से मरुभूमि का यथार्थ सामने रखा। उनकी कहानियों में रेगिस्तान की विकट परिस्थितियों का सजीव चित्रण है-जल के अभाव, भूख, अकाल और विस्थापन की पीड़ा के साथ–साथ मानवीय संबंधों की ऊष्मा, लोकसंस्कृति की जिजीविषा और संघर्षशील चेतना का भी समावेश मिलता है। मधुकर का साहित्य यह दर्शाता है कि मरुस्थलीय जीवन मात्र पीड़ा और अभाव का पर्याय नहीं है, बल्कि उसमें लोक–जीवन की जड़ों से जुड़ी हुई संस्कृति, मानवीय मूल्यों और सामाजिक सरोकारों की गहन व्याख्या भी निहित है।

पर्यावरणीय दृष्टि से देखा जाए तो मरुस्थल की परिस्थितियाँ-अकाल, जल–संकट, वनस्पति और जीव–जंतु का संघर्ष, तथा जलवायु की कठोरता-दोनों रचनाकारों के साहित्य में बार–बार परिलक्षित होती हैं। ये परिस्थितियाँ न केवल प्राकृतिक परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत करती हैं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं को भी आकार देती हैं। इसी प्रकार सांस्कृतिक दृष्टि से मरु प्रदेश के लोकगीत, लोकनृत्य, रीति–रिवाज, धार्मिक आस्थाएँ और सामाजिक संगठन साहित्यकारों के यहाँ जीवन की सशक्त धारा के रूप में उभरते हैं।

इस प्रकार कन्हैयालाल सेठिया और मणि मधुकर दोनों के साहित्य में रेगिस्तान का यथार्थ केवल भौगोलिक चित्रण तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसमें पर्यावरणीय चेतना और सांस्कृतिक संवेदना का अनूठा समन्वय मिलता है। उनके साहित्य में रेगिस्तान एक जीवंत चरित्र की भाँति उपस्थित है, जो पीड़ा और संघर्ष के साथ–साथ आशा, आस्था और जीवन–शक्ति का प्रतीक बनकर उभरता है।

वर्तमान समय में जब 'इको–लिटरेचर' और क्षेत्रीय साहित्यिक विमर्श की प्रवृत्तियाँ तेजी से विकसित हो रही हैं, तब मरु प्रदेश की पीड़ा और वहाँ की सांस्कृतिक संवेदनाएँ और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार सेठिया और मधुकर का साहित्य मरुस्थलीय जीवन का प्रतिनिधित्व करते हुए पर्यावरणीय और सांस्कृतिक विमर्श की नई संभावनाएँ खोलता है।

**बीज शब्द**– पर्यावरण, कन्हैयालाल सेठिया, मणि मधुकर,मरु–प्रदेश,रेगिस्तान

## पृष्ठभूमि

कन्हैयालाल सेठिया को मरुभूमि का कवि कहा जाता है क्योंकि उनकी कविताएँ मरुस्थल के लोकजीवन, प्रकृति और संस्कृति का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनका प्रमुख काव्य "धरती धोरां री" राजस्थान के रेगिस्तानी जीवन का जीवंत दस्तावेज है। इस काव्य में उन्होंने मरुभूमि की तपती धरती, धूल–धोरों से भरे विस्तार, अकालग्रस्त गाँवों और जल–संकट की विभीषिका का मार्मिक चित्रण किया है। सेठिया के काव्य में यह संवेदना केवल दार्शनिक या सौंदर्यात्मक नहीं है, बल्कि लोकजीवन के यथार्थ अनुभवों से जुड़ी हुई है।

रेगिस्तान का जीवन जहाँ एक ओर जल की कमी, भूख और कठोर प्राकृतिक परिस्थितियों से जूझता है, वहीं दूसरी ओर वह अपनी अडिग जिजीविषा और सांस्कृतिक परंपराओं के बल पर

जीवन को संभव बनाए रखता है। सेठिया की कविताओं में बार–बार यह संघर्ष उभरता है। वे न केवल पर्यावरणीय संकट की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं, बल्कि यह भी बताते हैं कि मरुस्थल का समाज कठिन परिस्थितियों में भी अपने सांस्कृतिक मूल्यों और आत्मसम्मान को जीवित रखता है। "धरती धोरां री" जैसी कविताएँ केवल लोकगीतात्मक सौंदर्य का परिचय नहीं करातीं, बल्कि उनमें पर्यावरणीय चेतना भी विद्यमान है। जल की एक–एक बूंद के लिए तरसते लोग, पशु–पक्षियों की प्यास, और अकाल की विभीषिका इस काव्य में गहराई से अंकित है। सेठिया ने लोकगीतों, लोककथाओं और लोकसंस्कृति को अपने साहित्य में इस प्रकार पिरोया है कि मरुभूमि का संपूर्ण जीवनचित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार, उनका काव्य मरु प्रदेश की सामाजिक, पर्यावरणीय और सांस्कृतिक चेतना का सशक्त दर्पण बन जाता है।

## मणि मधुकर के साहित्य में मरु प्रदेश की संवेदना

मणि मधुकर ने अपने कथा–साहित्य में मरुस्थलीय जीवन को गहरी संवेदनाओं के साथ उकेरा है। उनकी कहानियाँ गाँव–गाँव की उन पीड़ाओं का चित्रण करती हैं, जहाँ अकाल, विस्थापन, भूख और जल की तलाश सामान्य जीवन का हिस्सा बन जाते हैं। उनकी कहानियों में पात्र केवल अभावग्रस्त नहीं दिखते, बल्कि वे संघर्षरत, जीवट और आशावान भी प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि मणि मधुकर का साहित्य निराशा की भूमि पर खड़ा होकर भी जीवन के प्रति आस्था और विश्वास जगाता है।

मधुकर की कहानियों में लोकजीवन के उत्सव, सामूहिक मेल–मिलाप, सामाजिक सहयोग और परंपराओं की ऊष्मा प्रमुख रूप से विद्यमान रहती है। वे दिखाते हैं कि मरुभूमि का जीवन केवल कठिनाइयों और अभावों का पर्याय नहीं है, बल्कि उसमें लोक संस्कृति की गहरी जड़ें और सामूहिकता की ताकत भी मौजूद है। यही कारण है कि उनके साहित्य में लोकगीत, लोककथाएँ और सामूहिक श्रम की परंपराएँ बार–बार प्रकट होती हैं।

मधुकर की कृतियों में यह विशेषता दिखाई देती है कि वे मरुस्थलीय जीवन की कठोरता को निराशाजनक ढंग से नहीं चित्रित करते, बल्कि उसमें भी लोकजीवन की गर्माहट, आशा और मानवीय संवेदना को खोज निकालते हैं। उनके पात्र अकाल और जल–संकट से जूझते हैं, परंतु अपनी सामूहिकता और संस्कृति के बल पर जीवन को आगे बढ़ाते हैं।

इस प्रकार, मणि मधुकर का साहित्य मरुभूमि के जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ का दर्पण है। इसमें अभाव के साथ–साथ जीवन की दृढ़ता और सामूहिक संवेदनाएँ भी जीवंत रूप में उपस्थित रहती हैं।

कुल मिलाकर, कन्हैयालाल सेठिया और मणि मधुकर दोनों ने मरु प्रदेश को केवल प्राकृतिक परिदृश्य के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसके भीतर छिपे सामाजिक संघर्ष, पर्यावरणीय संकट और सांस्कृतिक समृद्धि को साहित्य के माध्यम से साकार किया है।

## पर्यावरणीय चेतना

पर्यावरणीय चेतना आधुनिक साहित्यिक विमर्श का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। मरुस्थलीय जीवन की कठोर परिस्थितियों ने सदियों से यहाँ के जनमानस को प्रकृति से सीधे संवाद के लिए विवश किया है। राजस्थान के रेगिस्तान में जलाभाव, सूखा, अकाल, रेत के तूफान और बंजर भूमि जैसी समस्याएँ केवल भौतिक कठिनाइयाँ नहीं हैं, बल्कि ये सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संकटों

को भी जन्म देती हैं। साहित्यकार इन संकटों को केवल यथार्थ के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उनमें निहित मानवीय संवेदनाओं, संघर्षों और समाधान की खोज को भी अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

कन्हैयालाल सेठिया के काव्य में पर्यावरणीय चेतना अत्यंत स्पष्ट और सशक्त रूप में दिखाई देती है। उनकी कविता "धरती धोरां री" केवल सौंदर्यगान नहीं है, बल्कि मरुभूमि की भीषण परिस्थितियों का दस्तावेज है। वे रेत के विस्तार, जल की कमी और सूखे की पीड़ा को इस तरह चित्रित करते हैं कि वह केवल भूगोल का विवरण नहीं रह जाता, बल्कि मनुष्य और प्रकृति के गहरे संबंधों का प्रतीक बन जाता है। उनके यहाँ जल की एक बूंद का महत्व जीवन और मृत्यु के बीच की रेखा के समान दिखाई देता है। पशु–पक्षियों की प्यास, किसानों की विवशता और अकाल से जूझते जनजीवन का चित्रण हमें पर्यावरणीय संकट की गहरी चेतना से जोड़ता है।

मणि मधुकर के कथा–साहित्य में भी पर्यावरणीय चेतना उतनी ही तीव्रता से उपस्थित है। उनकी कहानियों में अकालग्रस्त गाँव, जल की खोज में दूर–दूर तक भटकते लोग, और सूखी धरती की करुणा बार–बार सामने आती है। जलाभाव और सूखा केवल प्राकृतिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक विघटन और पलायन का कारण भी बनते हैं। मधुकर इन कहानियों के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि पर्यावरणीय संकट दरअसल मानव जीवन और उसकी सांस्कृतिक संरचना को प्रभावित करता है। उनकी कथाओं में यह भी झलकता है कि मरुभूमि का समाज इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद सामूहिकता और सहयोग की भावना से जीवन को बनाए रखने की जिजीविषा दिखाता है।

इन दोनों रचनाकारों का साहित्य यह प्रमाणित करता है कि मरुस्थल की विकट परिस्थितियाँ केवल अभाव की कहानी नहीं हैं, बल्कि उनमें मानव और प्रकृति के बीच संतुलन की खोज भी निहित है। जल और हरियाली के लिए संघर्ष केवल भौतिक आवश्यकता नहीं, बल्कि अस्तित्व की रक्षा और संस्कृति के संरक्षण का आधार है।

कन्हैयालाल सेठिया का साहित्य मरुभूमि की पर्यावरणीय चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज है। उनकी चर्चित कविता "धरती धोरां री" मरुभूमि के संघर्षमय जीवन और पर्यावरणीय यथार्थ का जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है। सेठिया लिखते हैं-

"धरती धोरां री, धूप घणी, बिन बूँद री प्यासी झोली।"

यहाँ रेगिस्तान की तपिश और जलाभाव केवल भूगोल का यथार्थ नहीं, बल्कि अस्तित्व की जिजीविषा का प्रतीक है। पानी की एक बूंद का महत्व जीवन और मृत्यु के बीच की दूरी जितना बड़ा हो जाता है।

उनकी कविता "कूं–कूं" में घड़ा, मटकी और 'धरती की सांढ' जैसे बिंब जल संकट और मरुस्थल की त्रासदी का प्रतीक बनते हैं। यह केवल मरुभूमि की कहानी नहीं है, बल्कि आधुनिक युग के उस जल संकट की ओर भी संकेत है जो पूरी मानवता के सामने खड़ा है। इसी तरह "अंधड़ से प्रताड़ित" में सड़क और टायरों के बीच दबे रेत के टीले आधुनिक विकास के नाम पर प्रकृति के शोषण और पर्यावरणीय असंतुलन का प्रतीक बनते हैं।

मणि मधुकर के साहित्य में भी पर्यावरणीय संवेदनाएँ उतनी ही सशक्त हैं। उनकी कविता में जीवन की अस्थिरता,अधूरी उम्मीदों और अनिश्चित भविष्य की ओर संकेत किया गया है। मधुकर मरुभूमि

की प्राकृतिक विडंबनाओं को केवल यथार्थ के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और मानवीय संकट के रूप में सामने रखते हैं। उनकी रचनाओं में अकालग्रस्त गाँव, जल के लिए भटकते लोग और विस्थापन की समस्या स्पष्ट रूप से पर्यावरणीय असंतुलन का परिणाम बनकर उभरती है।

सेठिया की "बसंत" और "लीलटांस" जैसी कविताओं में फूल, बीज, दीया और पवन जैसे बिंब हरियाली, नवजीवन और पर्यावरणीय पुनर्जागरण का संदेश देते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए मरुभूमि केवल अभाव का प्रतीक नहीं, बल्कि जीवनदायिनी शक्ति और संभावनाओं का केंद्र भी है।

इन दोनों साहित्यकारों की रचनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि रेगिस्तान का यथार्थ केवल क्षेत्रीय समस्या नहीं है, बल्कि वैश्विक पर्यावरणीय विमर्श से जुड़ा हुआ प्रश्न है। आज जब पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन, जल संकट और मरुस्थलीकरण जैसी चुनौतियों से जूझ रही है, तब कन्हैयालाल सेठिया और मणि मधुकर का साहित्य हमें यह सिखाता है कि साहित्य समाज को पर्यावरणीय चेतना से जोड़ने और उसे अधिक संवेदनशील बनाने का माध्यम हो सकता है।

इस प्रकार कन्हैयालाल सेठिया और मणि मधुकर दोनों का साहित्य मरुस्थल की पर्यावरणीय समस्याओं को केवल स्थानीय मुद्दा नहीं मानता, बल्कि उसे वैश्विक पर्यावरणीय विमर्श से जोड़ता है। आज जब जलवायु परिवर्तन, जल संकट और मरुस्थलीकरण जैसी समस्याएँ पूरी दुनिया के सामने चुनौती बनकर खड़ी हैं, तब इन दोनों साहित्यकारों का साहित्य हमें यह सिखाता है कि साहित्य केवल सौंदर्याभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह पर्यावरणीय चेतना जगाने का सशक्त माध्यम भी है।

कन्हैयालाल सेठिया का साहित्य राजस्थानी लोकजीवन और संस्कृति का जीवंत दस्तावेज है। उनकी कविताओं में जिस लोक संस्कृति का चित्रण हुआ है, वह केवल ग्रामीण जीवन की झलकियों तक सीमित नहीं है, बल्कि मरुस्थलीय समाज में सदियों से रची–बसी सांस्कृतिक चेतना का सजीव रूप है। लोक संस्कृति का आशय उस संस्कृति से है, जिसे जनमानस ने अपने अनुभवों, संघर्षों और परंपराओं से निर्मित और संरक्षित किया है। इसमें जीवन के प्राकृतिक, धार्मिक, सामाजिक और नैतिक आयाम समाहित होते हैं। लोकगीत, लोककथा, कहावतें, पहनावा, रीति–रिवाज, विश्वास और मानवीय संवेदनाएँ इस संस्कृति के प्रमुख अंग हैं।

सेठिया जी की काव्यदृष्टि में लोक संस्कृति केवल विचार का विषय नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला है। उनकी कविता "धरती धोरां री" इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। यह कविता राजस्थान की लोकगीत परंपरा में लिखी गई है और आज इसे 'राजस्थान रा राष्ट्रगीत' का दर्जा प्राप्त है। इसकी लय, भाषा और विषयवस्तु जनमानस से इतनी गहराई से जुड़ी है कि यह केवल एक गीत नहीं, बल्कि लोक–संस्कृति का उत्सव प्रतीत होती है। इसमें कवि ने राजस्थान की धरती को पवित्र और गरिमामयी बताया है-"धरती धोरां री, आ तो सुरगां नै सरमावै, ई पर देव रमण नै आवै।" इन पंक्तियों में निहित भाव यह दर्शाते हैं कि मरुस्थल की यह भूमि लोकजीवन के लिए देवभूमि है, जहाँ प्रकृति का प्रत्येक अंश सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत है।

इसी प्रकार "पाथल और पीथल" कविता राजस्थानी वीरगाथाओं और लोकगीतों की परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें अरै घास की रोटी और राणा के दुःख–जागरण जैसे बिंब केवल ऐतिहासिक स्मृतियों का पुनरुत्थान नहीं करते, बल्कि लोकगाथाओं की उस शैली को सामने लाते

हैं, जिसे गाँव–ढाणियों में आज भी गाया जाता है। यहाँ लोकनायक, लोकप्रतीक और लोकभाषा मिलकर सांस्कृतिक चेतना की उस शक्ति को प्रकट करते हैं, जो किसी भी सभ्यता को जीवित बनाए रखती है।

सेठिया की कविता "मींझर" में भी लोकगीतों का प्रभाव स्पष्ट है। "तेली रो वा पृथ्यों, घाणी बोली... " जैसे पद स्थानीय बोली, लय और भावनाओं के साथ उस लोकधारा का अनुभव कराते हैं, जिसमें पीढ़ियों से श्रम, जीवन और उत्सव का संगीत बहता आया है। इसी तरह "गागर मांय सागर" जैसे पदबिंबों से लोकभाषा की मिठास और गहराई का अनुभव होता है। राजस्थानी शब्द "मांय, रौ, सांभलो, घणी" कविता को लोकगीत जैसी आत्मीयता प्रदान करते हैं।

उनकी कविता "धर कुंचा धर मजलां" लोकगीत शैली का ही एक रूप है, जहाँ बोलों की मिठास, आत्मीयता और सरल जीवन–दर्शन सांस्कृतिक चेतना के रूप में सामने आते हैं। यहाँ लोक संस्कृ ति को केवल रस्मों–रिवाजों या परंपराओं की जड़ता में नहीं, बल्कि मानवीय गुणों की सहजता और आत्मीयता में खोजा गया है। इसी प्रकार "कूं–कूं" कविता में कागद, स्याही, सबद और गाय जैसे प्रतीकों का प्रयोग लोकगीतों के रूप में हुआ है। यह पंक्तियाँ बताती हैं कि किस प्रकार साधारण जीवन और उसकी वस्तुएँ भी लोक संस्कृति में गीत का रूप ले लेती हैं और आनंद का स्रोत बन जाती हैं।

"मेरे गीत में हूँ मैं न, मेरी तृप्ति में हूँ मैं न" जैसी पंक्तियों में कवि ने अपने आंतरिक दुःख, एकाकीपन और असंतोष को अभिव्यक्त किया है। यह आत्मव्यथा भी लोक–संस्कृति से जुड़ी है, क्योंकि लोकगीत सदैव सामूहिक पीड़ा और सुख–दुःख की साझेदारी का माध्यम रहे हैं। सेठिया ने इस साझेदारी को व्यक्तिगत भावनाओं से जोड़कर उसे सांस्कृतिक चेतना का व्यापक आयाम प्रदान किया है।

इसी तरह "मेरे गीत निखरते जाते" में आँसू, आह और बुलबुल जैसे प्रतीक उस लोकानुभूति की ओर संकेत करते हैं जिसमें गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि दुःख–सुख के बीच पुल का कार्य करते हैं। यहाँ बुलबुल लोकगीत की लय और लोकजीवन की संवेदनशीलता का प्रतीक बन जाती है।

इसी प्रकार मणि मधुकर राजस्थानी लोकभाषा और लोकसंस्कृति के गहरे और आत्मीय चित्र देने वाले कवि रहे हैं। उनकी कविताएँ ग्रामीण जीवन के सभी तत्वों-संस्कार, बोली, उत्सव, लोकपरंपराएँ को दर्शाती हैं।

उनकी कविता "पगफेरौ" (पग फेरना अर्थात् जीवन की यात्रा, परिवर्तन की प्रक्रिया) में हिन्दी या राजस्थानी लोकबोली की सहजता और लोकस्वरूप की अनुभूति मिलती है, जैसे पंक्तियाँ "कुण झीर दिया थांरां गाभा? कुण छांगनै कर दियौ थांनै नागौ–निस्सरड़ौ?" ये पंक्तियाँ जीवन की उस पारंपरिक लोकसंस्कृति की ओर इशारा करती हैं जहाँ व्यक्ति गाँव–ढाँचे, आपसी रिश्ते, त्योहार और सामुदायिक जीवन से घिरे होते हैं।

इसी प्रकार "लोक परंपरा" शीर्षक से आपकी अन्य कविताएँ हैं जो पारंपरिक रीति–रिवाजों और सामाजिक मान्यताओं को बदलती हैं। कविताएँ जैसे "जातरा मांय", "पंख्या–पाटा", "रस्तौ", "गारड़ी" आदि में ग्रामीण परिवेश, लोक त्योहारों की हलचल, पुराने विश्वासों का प्रभाव और ग्रामीण बोलियों की मिठास स्पष्ट है।

कवि की भाषा स्थानीय बोलियों से इतनी गहराई से जुड़ी है कि एक–एक शब्द में जीवन की सहजता झलकती है। जैसे "घास का घराना" या "जिस गाँव–ढाणी की झंकार सुनाई दे" जैसी कविताएँ हमें गाँव की मिट्टी, खेतों की हवा और पशु–पक्षियों के स्वर का अहसास कराती हैं। ये जीवन की सरलता ही लोकसंस्कृति की आत्मा है।

मणि मधुकर ने उन चीजों को भी शब्द दिए हैं जो अक्सर नगण्य समझी जाती हैं - खेत की हलचल, चूल्हे की राख, खोदी गई जमीन, पुराने पेड़ों की छाया, बारिश की ताल, मिट्टी की सौंधी खुशबू आदि। इन चीजों को वे सिर्फ पर्यावरण का भाग नहीं मानते, बल्कि ग्रामीण जीवन के अनुभवी घटक बनाते हैं, जो आत्म–गौरव और सांस्कृतिक पहचान का आधार होते हैं।

उनकी कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि लोक संस्कृति केवल पुराने रीति–रिवाजों या त्योहारों का संग्रह नहीं है, बल्कि एक जिजीविषा है-वह जीवित अनुभूति है जो भाषा, बोली, प्रतीक, चहल–पहल, लोक विश्वास, मानवीय संबंधों और प्राकृतिक संदर्भों से बनी है।

## निष्कर्ष

"कन्हैयालाल सेठिया और मणि मधुकर के साहित्य में पर्यावरणीय और सांस्कृतिक संवेदना" विषय का अवगाहन करने पर यह स्पष्ट होता है कि मरुस्थलीय जीवन केवल भौगोलिक कठोरता और अभाव का पर्याय नहीं है, बल्कि यह मानवीय जिजीविषा, सामूहिकता और सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक भी है। कन्हैयालाल सेठिया ने अपने काव्य के माध्यम से मरुस्थल के धूल–धोरों, अकाल और जलाभाव के यथार्थ को गहराई से अभिव्यक्त किया। उनकी कविताएँ जैसे "धरती धोरां री", "मींझर" और "पाथल और पीथल" केवल पर्यावरणीय संकट का दस्तावेज नहीं, बल्कि लोकगीतों और लोकपरंपराओं से जुड़ी हुई सांस्कृतिक अस्मिता का जीवंत परिचय भी कराती हैं। उनके साहित्य में पानी की एक बूंद जीवन और मृत्यु के बीच की दूरी को रेखांकित करती है, तो वहीं लोकभाषा और लोकगीत मरुभूमि की सांस्कृतिक आत्मा को सहेजते हैं।

दूसरी ओर, मणि मधुकर का साहित्य मरुभूमि के सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ का सशक्त दर्पण है। उनकी कहानियों और कविताओं में अकालग्रस्त गाँवों, विस्थापन और भूख की त्रासदी का चित्रण तो है, लेकिन उसके साथ–साथ लोकजीवन की ऊष्मा, सामूहिक सहयोग और परंपराओं की जिजीविषा भी स्पष्ट दिखाई देती है। मधुकर की कविताओं जैसे "पगफेरौ", "जातरा मांय", "रस्तौ" और "गारड़ी" में लोकबोलियों की मिठास और लोकसंस्कृति की आत्मीयता मिलती है। वे यह प्रमाणित करते हैं कि मरुस्थलीय जीवन कठिनाइयों के बावजूद जीवंत, आशावान और सांस्कृतिक मूल्यों से परिपूर्ण है।

सेठिया और मधुकर दोनों के साहित्य में मरु प्रदेश केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि जीवित और धड़कता हुआ चरित्र है। एक ओर पर्यावरणीय संकट-अकाल, सूखा, जल–संकट और विस्थापन को वे गहराई से रेखांकित करते हैं, तो दूसरी ओर लोकगीतों, परंपराओं और सामूहिकता के माध्यम से सांस्कृतिक समृद्धि और मानवीय जिजीविषा को भी सामने लाते हैं। यही कारण है कि उनका साहित्य क्षेत्रीय सीमाओं से आगे बढ़कर वैश्विक संदर्भों में भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आज जब जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट विश्वस्तरीय चुनौती बन चुके हैं, तब इन दोनों रचनाकारों का साहित्य हमें यह सिखाता है कि साहित्य केवल भावनाओं का उत्सव नहीं, बल्कि

जीवन की गहन समस्याओं का समाधान सुझाने और मानवीय चेतना जगाने का माध्यम भी हो सकता है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कन्हैयालाल सेठिया और मणि मधुकर का साहित्य मरुस्थल की पर्यावरणीय त्रासदी और सांस्कृतिक जिजीविषा का समन्वित चित्र प्रस्तुत करता है। यह साहित्य हमें यह संदेश देता है कि रेगिस्तान केवल रेत और अभाव की भूमि नहीं, बल्कि जिजीविषा, आशा और सांस्कृतिक गरिमा का जीवंत प्रतीक है।

## संदर्भ सूची

1. सेठिया, कन्हैयालाल. धरती धोरां री. जयपुरः राजस्थान साहित्य अकादमी, 1946.
2. सेठिया, कन्हैयालाल. मींझर. बीकानेरः लोकभारती प्रकाशन, 1956.
3. सेठिया, कन्हैयालाल. पाथल और पीथल. दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1960.
4. मधुकर, मणि. पगफेरौ. जयपुरः राजस्थान साहित्य अकादमी, 1982.
5. मधुकर, मणि. जातरा मांय. जोधपुरः सूर्यकांत प्रकाशन, 1985.
6. मधुकर, मणि. गारड़ी. बीकानेरः लोकवाणी प्रकाशन, 1990.
7. आचार्य, हजारीप्रसाद द्विवेदी. हिन्दी साहित्य और संवेदना. दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1971.
8. जोशी, नाथूराम. राजस्थान का साहित्यिक परिदृश्य. जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1988.
9. शर्मा, रामनिवास. कन्हैयालाल सेठियारू व्यक्तित्व और कृतित्व. बीकानेरः साहित्य संगम, 1995.
10. चौधरी, गिरधारीलाल. राजस्थान के कवि और संस्कृति. अजमेरः राजस्थान साहित्य परिषद, 2002.
11. जैन, निर्मला. हिन्दी साहित्य और पर्यावरण चेतना. दिल्लीः साहित्य भंडार, 2005.
12. भटनागर, कैलाश. मरुभूमि और साहित्यरू सांस्कृतिक अध्ययन. जोधपुरः मरुप्रकाशन, 2010.
13. शेखावत, प्रेमकुमार. राजस्थान की लोकसंस्कृति और आधुनिक साहित्य. जयपुरः साहित्यागार, 2015.